87.

तित्थयर

जैन भवन

वर्ष ६ अंक ५ : सितम्बर १९८२

बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस

कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram: PEARLMOON

Telephone 22-4110
22-3323

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality Woollen Yarn/Carpet Yarn and Superior Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS
Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :
4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office :
The Bikaner Woollen Mills
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ६ : अंक ५

सितम्बर १९८२

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७००००७

सूची

महावीर ने कहा था १३३

आह्वान १३८

अर्द्धकथानक १४०

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र १५२

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या १६०

अम्बिका सह नेमिनाथ, सुलगी, बाँकुड़ा, पश्चिम बंगाल

महावीर ने कहा था

[पूर्वानुवृत्ति]

संयम सम्बन्धी

स्थावर और अस्थावर विषय में,
वह कितना ही सामान्य क्यों न हो,
जब तक तुम्हारी आसक्ति रहेगी
या तुम आसक्ति का अनुमोदन करोगे,
तब तक तुम दुःख से मुक्त नहीं होगे।

मिथ्या बोलना
अब्रह्मचर्य परिग्रह
और अदत्तदान ग्रहण
संसार बन्ध का कारण है
अतः इससे विरत हो जाओ।

जिसे जाति का अहंकार नहीं,
रूप का अहंकार नहीं,
लाभ का अहंकार नहीं,
श्रुतज्ञान का अहंकार नहीं
और जो सब प्रकार की माया परिहार करता है,
धर्म ध्यान में परायण है,
वही यथार्थ भिक्षु है।

जो देह सम्बन्ध में उदास है,
गालियाँ देने पर,
मारने पर, यहाँ तक कि तीक्ष्ण अस्त्र से
विद्ध करने पर भी
पृथ्वी की भाँति निर्विकार है
और जिसमें वासना और कौतूहल नहीं,
वही यथार्थ भिक्षु है।

सम्यक् दर्शन प्राप्त कर
सम्यक् ज्ञान और तप में
संयम के लिए जो प्रयत्नशील है,
पूर्वबद्ध कर्म को जो
तपस्या से क्षय करता है,
मन वचन काया से
जो सर्वदा जागरूक है,
वही यथार्थ भिक्षु है।

क्रोध, मान, माया, लोभ रूप
कषायों का जो परिहार करता है,
जो केवली प्ररूपित वाक्य में दत्त चित्त है,
जिसे सोना रौप्यादि की आकांक्षा नहीं
और जो विषयी लोगों का
संसर्ग नहीं करता,
वही यथार्थ भिक्षु है।

संसार के अधिकांश मनुष्य ही
प्रलोभनमय ऐहिक विषयों से आकृष्ट हैं।
ऐहिक विषयों की चिन्ता मत करो,
क्रोध का परिहार करो,
मान, माया, लोभ का परित्याग करो।

भव तृष्णा ही वह लता है
जो भयंकर है,
विषमय है उसका फल।
यथान्याय उसे उत्पाटित कर
मैं सुख से विचरण करता हूँ।

जो सुख भोग तुम्हारे करतल में है
उन सुख भोगों का भी सेवन मत करो
तभी तुम विवेक प्राप्त करोगे,
जो सम्यक् संबुद्ध हैं
उनके अन्तेवासी होकर
सम्यक् चारित्र प्राप्त करो।

उसका परित्याग ही यथार्थ परित्याग है
जो काम्य सुख भोग प्राप्त करने पर भी
स्वेच्छा से उसका परिहार करता है
उसका परित्याग, परित्याग नहीं
जो विवशतावश
वस्त्र, गन्ध, अलंकार, स्त्री और शैया का
भोग करने में समर्थ नहीं।

दुर्जन संसर्ग परित्याग करो
एवं उनके सम्पर्क में सतर्क रहो,
दुर्जन संसर्ग आपात मधुर होते हैं।

आहत होने पर भी क्रोध मत करो,
दुर्वाक्य सुनकर भी जलो मत,
प्रशान्त मन से सब कुछ सहन करो,
प्रतिवाद मत करो।

जो अनुकूल है उसका परिहार करो,
सतत् जागरूक रहो,
एक स्थान पर ही अवस्थान मत करो,
चारित्र में शिथिलता मत आने दो
एवं सर्वप्रकार के उपसर्ग सह्य करो।

शीत-ग्रीष्म, मसक-मक्खी,
प्रिय-अप्रिय, आधि-व्याधि
इस शरीर को पीड़ित करेंगे—
समभाव से उन्हें सहन करो
और पूर्वार्जित कर्म-रज
विनष्ट करो।

गीतमात्र ही विलाप है,
नृत्य विडम्बना,
अलंकार भार रूप,
सुख भी है दुःखमय।

ऐश्वर्य व परिजन
रक्षा करने में समर्थ नहीं होते—
ऐसा जानो,
जीवन को परिज्ञात कर
कर्म से मुक्त बनो।

जो सरल है वह शुद्ध है,
जो शुद्ध है धर्म उसका आश्रय करता है,
घृत सिंचित पावक की भाँति
वह निर्वाण लाभ में समर्थ होता है।

धर्म उत्कृष्ट मंगल है,
अहिंसा संयम तप ही धर्म है,
जो धर्म में अवस्थित है
देवता भी उन्हें नमस्कार करते हैं।

प्राणी-हत्या मत करो,
दिए बिना कोई वस्तु मत लो,
मिथ्या और संशयपूर्ण वाक्य मत कहो,
संयमियों का यही धर्म है।

अपने सुख के लिए
त्रस-स्थावर जीवों की जो हत्या करता है
या उन्हें कष्ट देता है
एवं बिना प्रदत्त ग्रहण करता है,
आचरणीय शिक्षा प्राप्त नहीं करता,
वह कष्ट पाता है।

इसीलिए जो विचक्षण है
वह संसार-बन्धन का
कारण अवगत कर
सत्य का अनुसंधान करेगा,
समस्त जीवों पर मैत्रीभाव रखेगा।

जीव हत्या नहीं करना समस्त ज्ञान का सार है,
कारण समस्त जीवों को अपनी तरह देखना ही
अहिंसा है एवं यही जानना है।

मर्त्य, ऊर्द्ध और अधोलोक के
किसी भी प्राणी को पीड़ित मत करो,
हाथ-पाँव संयत रखो
और अदत्त दान ग्रहण न कर
विचरण करो।

जो संयत है
वे क्या त्रस, क्या स्थावर,
क्या छोटा, क्या बड़ा,
यहाँ तक कि दाँत कुरेदने की काँटी तक को
अपने से नहीं लेता,
अन्य को लेने कहता नहीं,
लेने पर अनुमोदन नहीं करता।

जो मायायुक्त है,
सरल व तप निरत है,
वही आत्मा को परिशुद्ध करता है,
पूर्वबद्ध कर्म को क्षय करता है,
नूतन कर्म का बन्धन नहीं करता है।

[क्रमशः

आह्वान

सुमन्त भद्र

इतने जन्मों की पीड़ा,
इतनी यात्राओं की श्रान्ति,
इतनी उलझनों की भ्रान्ति
और इतनी बिडम्बनाओं की
मूर्च्छा, वासना और लिप्ति !
पर, आस्था के नाम पर
पूर्वाग्रहों, वर्जनाओं और विकथाओं की
लक्ष-लक्ष अभेद्य नगराज !
अपने असामर्थ्य की निराशा,
अमव्यता की कुण्ठा,
प्रवासी पथ का संत्रास
और जाने कितने उत्थान-पतन !
किन्तु आत्ममृग का आखेट
इतना संकुल और असंभाव्य कि
इन्द्रियाँ नीरस होकर चरमारने लगीं,
मन का असंयमित अश्व
हारकर धराशायी हो गया,
गोधूलि को समर्पित
प्राणों के दिग्भ्रान्त रथ
और राग सुनते मौन
देह की असाध्य वीणा,
शंकित मन,
किसी ऐसी संगीति में ले चलो
जहाँ विसर्जन और विश्राम की
दीपशिखा,
चिन्तामणि रत्नत्रय लिये
तुम्हारा आह्वान करती हो,

जहाँ तुम अपनी अहंकृति-कारा से मुक्त
स्वयम्भू और भूमा बन सको !
उपादान और उपाश्रय की पगडण्डियों से
विपथ तुम्हारे पांव
बढ़ सकें स्वस्ति की ओर
और दुरा सकें तुम्हारा अर्हत् रूप
तुम्हारी भीति
बन सको तुम
निराकुल, निर्भ्रान्त, निर्द्वन्द्व !

अर्द्ध कथानक

बनारसी दास

[हिन्दी साहित्य में तो है ही शायद भारतीय साहित्य में भी 'अर्द्ध कथानक' जीवन चरित्र मूलक प्रथम ग्रन्थ है। इसके लेखक बनारसी दासजी जैन व्यवसायी थे। किन्तु व्यवसायी होने पर भी वे एक सुकवि और धर्म संस्कारक भी थे। जड़ धार्मिक क्रिया काण्ड के विरुद्ध उस समय जो अध्यात्म आन्दोलन प्रारम्भ हुआ था उसके वे ही प्रमुख नेता रूप में आगे जाकर स्वीकृत हुए। परन्तु अपने इस जीवन चरित्र में उन्होंने स्वयं को जिसप्रकार प्रकट किया है उससे विस्मित हुए बिना नहीं रहा जा सकता।

बनारसी दास जी का समय ईसा की सोलहवीं शताब्दी था। मुगल साम्राज्य का गौरव उस समय चरम-सीमा पर था। बनारसी दास जी ने उस समय के राज्य कर्मचारियों के अकारण अत्याचार का लोमहर्षक विवरण भी इसमें दिया है। ऐसा ही विवरण प्रायः उनके समकालीन कवि-कंकण मुकुन्दराम ने भी अपने चण्डी-मंगल काव्य के प्राक्कथन में 'प्रजा के पाप का फल' कहकर दिया है। बनारसी दासजी ने भी ऐसा ही कहा है। कारण उस समय शासन के विरुद्ध न कोई आवाज उठाता था न प्रश्न। मुकुन्दराम का आत्म परिचय तो मात्र आत्म परिचय ही है किन्तु बनारसी दास जी का अर्द्ध कथानक उनके पूर्ण जीवन की ही कथा है एवं ठीक उसी प्रकार की शैली में लिखा हुआ है जैसा आज के लेखक लिखते हैं।

ग्रन्थ का नाम अर्द्ध कथानक होने का कारण बनारसी दास जी ने इसमें अपने जीवन के ५५ वर्षों की घटना का विवरण दिया है। मनुष्य की पूर्ण आयु ११० वर्ष मानकर उन्होंने इसका नाम अर्द्ध कथानक रखा था फिर भी उनका यह अर्द्ध कथानक पूर्ण कथानक ही हो गया। क्योंकि इसके बाद वे अधिक दिनों तक जीवित ही नहीं रहे।

अर्द्ध कथानक कविता में लिखा हुआ है। इसकी भाषा ब्रज मिश्रित पूर्वी हिन्दी है।

—सम्पादक]

एक भक्त एवं दास के रूप में भक्ति भरे हृदय से करबद्ध होकर मैं भगवान पार्श्व और सुपार्श्व को प्रणाम करता हूँ।

वरुणा और असि ये दोनों नदियाँ गंगा में आकर मिल गयी हैं। जिस नगर को घेर कर ये प्रवाहित होती हैं उसका नाम है वाराणसी। कशिवार जिले में अवस्थित होने के कारण इसे काशी भी कहते हैं। इसी नगर में पार्श्व और सुपार्श्व दोनों तीर्थंकरों ने जन्म लिया था। यहीं उन्होंने कल्याणकर और शिवतम पथ का उपदेश दिया था। अतः लोग इसे शिवपुरी भी कहते हैं।

इस शहर के विभिन्न नामों का यही यथार्थ कारण है। जो दूसरी बातें कहते हैं वे मिथ्या कहते हैं।

मेरा नाम है बनारसी। जो शहर दो तीर्थंकरों की जन्म भूमि है उसी के नाम की छाप मेरे नाम पर है। मैं आपको अपनी जीवन कथा सुनाऊँगा क्योंकि मैं चाहता हूँ सभी मेरे जीवन कथानक को जानें।

शैशव काल से ही मैंने जो कुछ देखा अनुभव किया वही कहूँगा। साथ ही साथ दूसरों से भी जो कुछ मैंने सुना है वह भी उसमें रहेगा। संक्षेप में जो कुछ मेरे जीवन में घटित हुआ वही आपको बताऊँगा। भविष्य की बात तो मैं जानता नहीं। उसे तो मात्र सर्वज्ञ ही बता सकते हैं।

मध्य देश की चलती भाषा में ही मैं अपना सही कथानक लिखूँगा। यहाँ तक कि जो गोपनीय है उसे भी निष्कपट भाव से कहूँगा। अपने गुणों के साथ-साथ अपनी अवगुणों की बातें भी छोड़ूँगा नहीं।

बन्धुगण, मैं अपना इतिवृत्त जैसा बता रहा हूँ ध्यान से सुनिए—

मैं श्रीमाल वंशीय जैन हूँ। एक समय श्रीमाल लोग भारत के मध्य देश में रोहतक शहर के निकटस्थ विहोली ग्राम में रहते थे। वे राजवंशीय राजपूत थे। एक प्रभावशाली जैनाचार्य के प्रभाव से उन्होंने जैन धर्म ग्रहण कर अपने पूर्ववर्ती हिंसक जीवन का परित्याग कर मन्त्र खुदित माला को धारण किया अतः वे श्रीमाल कहलाए। मेरे पूर्व पुरुषों का गोत्र विहोलिया था कारण एक समय वे इसी विहोली के रक्षक थे।

अतीत से आजतक के मेरे पूर्व पुरुषों की दीर्घ नामावली देकर मैं आपलोगों को धैर्यच्युत नहीं करूँगा। मैं वहाँ से प्रारम्भ करूँगा जब से गंगा और गोसाल दो भाई रोहतक में आकर रहने लगे थे। इनके एक पूर्ववर्ती वंशधर का नाम था वस्ता। इन वस्ता का नाम लोग आज भी श्रद्धा से स्मरण करते हैं। वस्ता के पुत्र का नाम जेठमल और जेठमल के पुत्र का नाम जिनदास था। मेरे दादा जी मूलदास जी इन्हीं जिनदास जी के ज्येष्ठ पुत्र थे। वे धनाढ्य और प्रभावशाली व्यक्ति थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा

भी ठीक से हुई थी। उन्हें हिन्दी और फारसी का एक-सा ज्ञान था। उत्साही और बुद्धिमान व्यक्ति होने के कारण वे एक मुगल अमीर के मोदी बनने में सक्षम हुए। उसी अमीर के साथ वे मालव देश गए। उस समय मालव में सुख-शान्ति और समृद्धि छायी हुई थी।

मूलदास जी जिसके मोदी थे वह अमीर हुमायुँ के अधीनस्थ उच्च राज्य-कर्मचारी और सैनिक था। मालव के नरवार शहर में उस अमीर की जागीर थी। मूलदास जी उसी नरवार शहर में रहने और काम करने आए थे। अमीर के विश्वासपात्र होने के कारण उस अमीर का भी रुपया ब्याज पर देने का कार्य प्रारम्भ कर दिया। इससे अच्छी आय होने लगी।

विक्रम संवत् १६०८ (१५५१ खृष्टाब्द) के सावन शुक्ला पंचमी के दिन मूलदास जी के एक पुत्र हुआ। पुत्र के जन्म उपलक्ष में मूलदास जी ने बहुत धन व्यय कर उत्सव मनाया। नवजातक का नाम रखा खड़गसेन।

दो वर्ष पश्चात् मूलदास जी के एक पुत्र और हुआ। उसका नाम रखा गया थानमल। थानमल माता-पिता को बहुत प्रिय था। किन्तु मात्र तीन वर्ष की उम्र में ही उसकी मृत्यु हो गयी। उसे खोकर मूलदास जी और उनकी पत्नी की अवस्था उस पत्र-रहित वृक्ष-सी हो गयी जिसे काठ-फोड़ धूप को सिर पर उठाए खुले स्थान में खड़ा रहना पड़ता है। थानमल उनके लिए मेघ के एक टुकड़े की भाँति थे जिन्हें काल का एक प्रबल झोंका अनजाने ही उड़ाकर ले गया। इस दुःख को वे किसी भी प्रकार भुला नहीं पा रहे थे। इसके कुछ दिनों पश्चात् ही मूलदास जी की मृत्यु हो गयी।

इस प्रकार १६१४ सम्वत् में पिता-पुत्र दोनों की ही मृत्यु हो गयी। पितृहीन अनाथ खड़गसेन और उसकी माँ के दुःख की सीमा ही नहीं रही।

जिस समय मूलदास जी की मृत्यु हुई उस समय उनके मालिक अमीर नरवार में नहीं थे। वे किसी दूर ग्राम में थे। मूल दास जी की मृत्यु का संवाद सुनते ही वे शीघ्र नरवार लौट आए और मूलदास जी की चल-अचल सम्पति को जबर्दस्ती दखल कर उनके निवास स्थान पर ताला बन्द कर मोहर लगा दी।

बन्धु-बान्धव एवं सहाय-सम्बलहीन खड़गसेन और उनकी माँ नरवार छोड़कर पूर्व की ओर चले। राह में बहुत दुःख और कष्ट उठाकर अन्त में वे जौनपुर पहुँचे।

गोमती नदी के किनारे उस समय जौनपुर बहुत समृद्धिशाली नगर था। जौनपुर को घेर कर गोमती जिसप्रकार प्रवाहित होती थी उसका वर्णन एक छोटी कविता में दे रहा हूँ—

एक गहरी खाई की तरह
गोमती,
पहले दक्षिण में
फिर पूरब में
फिर उत्तर में
है प्रवाहवती।

गोमती नदी की विस्तृत तटभूमि तीन दिशाओं से नगर की रक्षा करती थी। बहुत दिनों पहले की बात है—पठान जौनशाह ने यहाँ आकर बस्ती स्थापित की थी। वे राज्य स्थापन कर स्वयं यहाँ के राजा बने और उस जगह का नाम रखा जौनपुर। जौनपुर को उन्होंने राजधानी बनाया एवं कुतबा पढ़कर विधिवत् राजदण्ड ग्रहण किया।

जौनशाह ने जौनपुर को खूब सुदृढ़ बनाया। पौनी आदि छत्तीस प्रकार के शुद्रों सहित चारों वर्णों के मनुष्य यहाँ बसने के लिए आए। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्रों की छत्तीस जातियाँ यहाँ निवास करने लगीं।

बड़ी-बड़ी इमारतें, चौड़े खुले मण्डप, विस्तृत मठ से जौनपुर और उसके उपनिवेश सभी की दृष्टि आकृष्ट करने लगे। नगर पथ के दोनों ओर मकानों की पंक्तियाँ थीं जिनके भीतर की ओर एक से अधिक चौक रहते। मकानों की छतों पर शामियाने लगे होते जिनपर अनेक रंगीन पताकाएँ उड़ती रहतीं।

जौनपुर की जितनी भी ख्यातिप्राप्त वस्तुएँ थीं उनके साथ बावन की संख्या जुड़ी हुई थी। जैसे—बावन परगना, बावन बाजार, बावन मण्डियाँ आदि। यहाँ तक कि जौनपुर के आस-पास बावन ही धर्मशालाएँ थी।

जौनपुर में एक के बाद एक नौ राजाओं ने राज्य किया। मैं उनके नाम बताता हूँ—प्रथम जौनशाह, द्वितीय बक्कर शाह, तृतीय सुरहर सुलतान। सुरहर के पश्चात् चतुर्थ थे मुहम्मद जान, पंचम राजा थे शाह निजाम, छठे थे शाह इब्राहिम, सातवें थे शाह हुसेन, आठवें थे गाजी सज्जित सेन और नवमें थे राजा साहब बखिया सुल्तान। ये सबसे अजेय थे।

जौनपुर राज्य की सीमा पर पूरब में पटना था, पश्चिम में इटावा, दक्षिण में विन्ध्य और उत्तर में घाघरा नदी थी। इस शहर का जो इतिहास मैंने विवृत किया है वह तीन सौ वर्ष पूर्व का इतिहास है। मैंने अपने वृद्ध स्वजातियों से जैसा सुना था वैसा ही यथावत् वर्णन किया है। इसके सत्यासत्य का दायित्व मुझ पर नहीं है।

अवश्य ही यह इतिहास अतीत का इतिहास है। हाँ, तो अब मैं अपने कथानक पर लौटता हूँ। १६१३ सम्वत् के पश्चात् जो कुछ घटा वह आपको सुना रहा हूँ।

जौनपुर में चिनालिया गोत्रीय मदन सिंह श्रीमाल नामक एक व्यक्ति रहते थे। वे जौहरी थे। उनके हीरे-माणिक्य का व्यापार था। खड़गसेन और उसकी माँ उन्हें खोजते-खोजते उनके घर पहुँचे। पुण्ययोग से ही वे मदन-सिंह के पास आए थे कारण मदन सिंह थे खड़गसेन के नाना छजीलाल जी के बड़े भाई। मदनसिंह ने खड़गसेन और उसकी माँ को सादर अपने यहाँ रख लिया। उन्हें स्नेह और सम्मान दिया। खड़गसेन की माँ ने शुरु से अन्त तक की सारी घटना उन्हें सुनायी कि किस प्रकार उनके कनिष्ठ पुत्र की मृत्यु हुई और उसके कुछ समय पश्चात् ही पति की। फिर मुगल अमीर ने किस प्रकार उनका सर्वस्व अपहरण कर लिया। यद्यपि खड़गसेन की माँ ने इस वृत्तान्त को बड़े धैर्यपूर्वक सुनाया था किन्तु इस दर्द भरे कथानक को सुनकर मदनसिंह की आँखों में जल भर आया। उन्होंने खड़गसेन की माँ को सान्त्वना देते हुए कहा—"बेटी, दुःख मत करो। सुख-दुःख तो धूप-छाँव की तरह है। तुम्हारे लड़का है। एकमात्र लड़का होते हुए भी यह तुम्हारे सुख का कारण बन सकता है।" ऐसा कहकर उन्होंने अपनी भतीजी और नाती को छाती से लगा लिया। उन्हें पहनने के लिए अच्छे वस्त्र दिए। इस भाँति खड़गसेन और उसकी माँ को आश्रय मिल गया। उनका समय सुख से व्यतीत होने लगा। अतः समय के प्रवाह की उन्हें अनुभूति ही नहीं हुई। उनके तीन वर्ष इस प्रकार सुख-शान्ति से कट गए मानों हर दिन ही एक उत्सव था।

खड़गसेन जब आठ वर्ष का हुआ तब उसे पढ़ने के लिए पाठशाला भेजा गया। वहाँ उसने लिखना-पढ़ना सीखा। सोने-चाँदी की खाद-परीक्षा करनी भी उसने सीखी। अच्छे-खोटे चाँदी के रुपये की पहचान करनी सीखी। आय-व्यय के समस्त अंक ठीक निकालकर बही-खाता लिखने में भी वह दक्ष हो गया। क्रमशः वह नियमित रूप से बाजार जाने लगा और रत्नों के व्यवसाय में भी दीक्षित हो गया।

इस प्रकार चार वर्ष कट गए। अब वह स्वतन्त्र रूप से कुछ करने की सोचने लगा।

जौनपुर के पूरब में बंगला सूबा था। उस समय वहाँ स्वाधीन पठान सुलेमान सुलतान राज्य करता था। सुलतान सुलेमान के साले थे लोदी खान। लोदी खान सुलतान को पुत्र की तरह प्रिय थे। इसी लोदीखान के दीवान थे सींघड़ गोत्रीय रायधन श्रीमाल। रायधन क्षमताशाली और सभी के लिए सम्माननीय थे। पाँच सौ पोतदार (राजस्व संग्राहक) उनके अधीनस्थ थे। बड़े भाग्यशाली थे वे लोग कारण प्रभूत अर्थ उपार्जन करते थे। रायधन उनलोगों का विश्वास करते थे। अतः वे लोग जो हिसाब देते उसे बिना कागज-पत्र देखे ही रायधन मान लेते। फिर रायधन धार्मिक प्रवृत्ति के मनुष्य थे। वे नियमित उपवास करते, प्रतिक्रमण करते। प्रतिक्रमण में प्रतिदिन पाप कार्यों की अनुशोचना करते और भविष्य में वैसा कार्य न करने का संकल्प करते। रायधन का संकल्प था जीवन में अब वे नवीन मकान नहीं बनाएँगे जबकि उनके पास इन कार्यों के लिए प्रचुर अर्थ था।

रायधन ने खड़गसेन को उनके अधीनस्थ रहकर कार्य करने को बुलवाया। एक दिन सुबह खड़गसेन माँ के सिवाय अन्य किसी को कुछ बताये बिना घर से निकल पड़े। माँ ने उन्हें जाने के लिए अनुमति ही नहीं दी राह खर्च के लिए अर्थ भी दिया। किन्तु यह सब कुछ मदन सिंह से छिपाकर किया गया।

खड़गसेन ने रास्ते में घोड़ा लिया। घोड़े पर चढ़कर वे रायधन के पास पहुँचे और घर वालों को बिना बताए जिस प्रकार वे भागकर आए थे सब कुछ उन्हें बता दिया। रायधन ने सहानुभूति ही नहीं प्रकट की उन्हें साहस और उत्साह भी दिलाया।

इस भाँति खड़गसेन रायधन के अधीनस्थ पोतदार बन गए। खड़गसेन की सेवा के लिए व कार्य में सहायता करने के लिए रायधन ने उन को दो कारकून दिए। कारकूनों को लेकर खड़गसेन परगना में गए और राजस्व अदा करना प्रारम्भ कर दिया। राजस्व के रूप में जो अर्थ वे संग्रह करते वह यथायथ रायधन और लोदी खान को भेज देते।

सम्मेद शिखर तीर्थ यात्रा के पूर्व इसी प्रकार सात मास व्यतीत हो गए। रायधन ने संघ लेकर तीर्थयात्रा जाना निश्चय किया और सुलतान से तीर्थ यात्रा जाने का आदेश-पत्र भी प्राप्त कर लिया। तीर्थयात्री सम्मेद शिखर पहाड़ पर गए एवं पूजा दर्शन कर शीघ्र ही वहाँ से नीचे उतर आए। रायधन अपनी

छावनी में चले गए। वहाँ मौन सहित उपवास का पच्चक्खान कर वे सामायिक करने लगे। सामायिक में माला लेकर नवकार मंत्र का जाप करना प्रारम्भ किया ही था कि उनके पेट में असह्य वेदना होने लगी। फलतः वे मूर्च्छित हो गए। सारी छावनी में विषाद छा गया। पर कोई कुछ नहीं कर सका एवं वे कुछ बोलें उसके पूर्व ही उनके प्राण निकल गए। उनकी देह भग्न दीवाल की भाँति जमीन पर गिर पड़ी और आत्मा अन्य लोक को प्रयाण कर गयी।

इसी प्रकार की घटनाएँ मनुष्य को संसार की नश्वरता पर चिन्तन करने को बाध्य कर देती हैं। अभी-अभी यहाँ वह मनुष्य था। अतीत के पुण्य कर्म से उसने सम्पत्ति और सम्मान दोनों ही अर्जित किया। अपार सम्पत्ति थी उसके पास। घोड़ों से अस्तबल भरा था, कितनी ही गाड़ियाँ थीं, अनगिनत पाइक और बरकन्दाज थे। फिर अर्थ भी दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा था। किन्तु अन्त में जो कुछ भी उन्होंने संचय किया एक सिर दर्द के सिवाय उसने क्या दिया उन्हें? जैसे-जैसे उनका सांसारिक बन्धन बढ़ता गया वे स्वयं खोते गए। लगा समस्त दिन के कठोर परिश्रम से क्लान्त एक मजदूर की भाँति सिर के बोझ को सहसा फेंककर वे अचानक दीवाल की आड़ में जैसे अदृश्य हो गए।

इस घटना ने आसपास के ग्राम और नगर में एक हलचल पैदा कर दी। खड़गसेन इस घटना को सुनते ही अपना कार्य छोड़कर जौनपुर लौट जाने की तैयारी करने लगे। भिखारी के वेष में उस रास्ते से जहाँ लोग यातायात नहीं करते या फिर वन अंचल के मध्य से होकर यात्रा प्रारम्भ की। अनेक नदी पहाड़ और वनों को अतिक्रम कर जब वे अपने घर लौटे तो बहुत रात हो चुकी थी। बड़े दीन भाव से वे गुरुजनों के पैरों में जा गिरे। जो कुछ अर्थ पास में छिपाया हुआ था वह अपनी माँ को दे दिया।

चार वर्ष पश्चात् १६२६ सम्वत् में जब उनकी उम्र १८ वर्ष की हो गयी खड़गसेन पुनः निकल पड़े। इसबार जौनपुर के पश्चिम में आगरा गए। वहाँ उनके चाचा सुन्दरदास से मिलना हुआ। सुन्दरदास सोने-चाँदी का काम करते थे। उन्होंने खड़गसेन को सादर ग्रहण किया। चाचा के व्यवसाय में कुछ अर्थ विनियोग करने पर इन्हें व्यवसाय में भागीदार बना लिया।

चाचा भतीजे में इतना प्रेम था कि लोग इन्हें पिता-पुत्र कह कर अभिहित करते थे। व्यवसाय में लाभ के अतिरिक्त इन दोनों में बहुत कुछ साम्य भी था। दोनों ही उदार और अपने व्यवसाय में दक्ष थे।

इस प्रकार और चार वर्ष बीत गए। विवाह करने के लिए खड़गसेन

मिराट गए। वहाँ श्रीमाल सुन्दरदास घोर की लड़की से विवाह किया। विवाहोपरान्त व्यवसाय के लिए पुनः आगरा लौट आए।

व्यवसाय में खूब लाभ हुआ। खड़गसेन ने कुछ अर्थ भी संचय कर लिया। अब वे पत्नी को लेकर अलग हो गए। कारण सुन्दरदास जी की पत्नी के साथ उनकी बनती नहीं थी।

किन्तु अलग होने के करीब दो या तीन वर्ष पश्चात् ही सुन्दरदास और उनकी पत्नी दोनों ही मृत्यु को प्राप्त हो गए। उनके कोई पुत्र नहीं था जो सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होता। थी मात्र एक अविवाहित लड़की। अतः खड़गसेन ने खूब धूम-धाम से उसका विवाह कर दिया। दहेज में भी खूब सोना-चाँदी दिया। बाद में पंचायत बुलवाकर अपने संयुक्त व्यवसाय में कितना उनका होता है कितना चाचा का होता है यह निर्धारित करने को कहा। पंचायत के मतानुसार चाचा का पूरा का पूरा हिस्सा उन्होंने चाचा की लड़की को दे दिया। उसमें से खड़गसेन ने एक कपर्दक भी अपने लिए नहीं रखा।

१६३३ सम्वत् में खड़गसेन जौनपुर रहने के लिए चले गए। एक घोड़ा और एक गाड़ी भाड़े पर लेकर उसी में अपना सारा सामान लादकर जौनपुर ले गए। सुरक्षा के लिए साथ में पाइक (सिपाही) भी ले गए थे।

जौनपुर पहुँचकर दस दिन भी विश्राम नहीं किया होगा कि एक दुकान खोली। अग्रवाल वंशीय एक धनी और सहृदयी व्यवसायी के साथ भागीदारी में खूब बड़ा काम प्रारम्भ किया।

खड़गसेन ने जैसा सोचा था उसी प्रकार व्यवसाय में खूब लाभ हुआ। दोनों ही जिस शर्त पर काम कर रहे थे उसमें वे प्रसन्न थे, स्वभाव भी दोनों का एक-सा था, दोनों ही एक दूसरे पर श्रद्धा करते थे। जो वस्तुएँ अधिकतर सुनारों के काम में आती थीं जैसे हीरा, मोती, माणक आदि उसी का बड़े रूप में व्यवसाय प्रारम्भ किया था।

समय सुख में बीतने लगा। सम्वत् १६३५ में खड़गसेन के एक पुत्र हुआ। पुत्रलाभ की खुशी में खड़गसेन ने खूब अर्थ व्यय किया किन्तु नवजातक की दस दिनों के भीतर ही मृत्यु हो गयी। इसकी मृत्यु से खड़गसेन और उसकी पत्नी को बहुत आघात पहुँचा।

विक्रम १६३७ में खड़गसेन अपनी पत्नी को लेकर रोहतक चले गए सती माँ की पूजा करने ताकि सती माँ उन्हें पुत्र दें। किन्तु राह में दस्युओं द्वारा

आक्रान्त हुए। पहने हुए वस्त्रों के अतिरिक्त सब उन्होंने लूट लिया। अतः बहुत कष्ट उठाने के बाद वे घर लौटे। उन्होंने सोचा था सती माँ उन्हें पुत्र देगीं किन्तु सती माँ ने दी उन्हें घोर विपत्ति। फिर भी उनकी आँखें नहीं खुलीं। वे नहीं समझ पाए कि वे मिथ्यात्वी देवी की पूजा कर रहे हैं। कुछ दिनों बाद फिर उन्होंने सती माँ के लिए यात्रा की। अज्ञानी मनुष्य देखकर भी नहीं देखता कि उनका विश्वास कितना निःसार और अर्थहीन है।

खड़गसेन सती माँ की पूजा कर शीघ्र ही लौट आए और व्यवसाय में मन लगाया। उनके नाना मदन सिंह क्रमशः सांसारिक विषयों से अनासक्त हो गए थे। मानसिक शान्ति के लिए उन्होंने घर-संसार का परित्याग कर साधु जीवन ग्रहण कर लिया। तीन वर्ष साधु जीवन पालन कर सम्वत् १६४१ में स्वर्गस्थ हो गए। उनके पवित्र आचरण को लोग आज भी याद करते हैं।

दो वर्ष पश्चात् पुनः सती माँ की याद आने पर खड़गसेन फिर सती मंदिर की ओर रवाना हुए।

विक्रम संवत् १६४३ (खृः १५८६) के माघ शुक्ला एकादशी शनिवार को और एक पुत्र हुआ। उसके जन्म समय में रोहिणी नक्षत्र का तृतीय चरण था। वृष राशि में चन्द्रमा था। नव जातक का नाम रखा गया विक्रमजीत।

इस पुत्र के जन्म की खड़गसेन आठ वर्ष से प्रतीक्षा कर रहे थे। अतः घर आनन्द का हिलोरे लेने लगा। स्त्रियों ने मंगल गीत गाए। दरिद्रों को दान दिया गया। इस प्रकार छः महीने तक आनन्द उत्सव चला। छः मास पश्चात् खड़गसेन सम्मेद शिखर के पार्श्वनाथ भगवान के पूजन दर्शन को रवाना हुए। साथ में शिशु पुत्र, कुटुम्ब-परिवार और आत्मियों को भी लिया। विधिवत् मन्दिर में पूजा की। शिशुपुत्र को प्रतिमा के सम्मुख रखकर सब करबद्ध होकर दूर खड़े हो गए। पुजारी तब प्रतिमा को प्रणाम कर बोला—"हे देव, आपका दासानुदास यह शिशु आपको प्रणाम करता है। इस पर दया कर इसे दीर्घ जीवी बनावें। क्योंकि जो आपकी शरण ग्रहण करता है आप उसकी रक्षा करते हैं।"

ऐसा कहकर पुजारी बैठ गया और गम्भीर ध्यान में डूब जाने का ढोंग रचा। आध घण्टे तक इसी प्रकार बैठे रहने के पश्चात् धीरे-धीरे आँखें खोलकर चारों ओर देखा और बोला—"बन्धुगण, अभी ध्यान में मुझे जो कुछ ज्ञात हुआ वह आपको बताता हूँ। तीर्थंकरों के मध्य सबसे अधिक पूज्यनीय भगवान पार्श्वनाथ के यक्ष मेरे सम्मुख आए और बोले—इस लड़के के लिए कोई भय नहीं है। भगवान पार्श्वनाथ ने जिस नगर में जन्म लिया उसी नगर के

नाम पर इस लड़के का नाम रखो। यह अवश्य ही दीर्घायु होगा। ऐसा कह-कर वे अन्तर्धान हो गए।"

पुजारी ने जो कुछ कहा खड़गसेन ने उस पर अक्षरशः विश्वास कर लिया। वे, उनके सभी स्वजन आत्मीयगण एक स्वर में बोल उठे जिस नगर में पार्श्व एवं उससे भी पहले सुपार्श्वनाथ ने जन्म लिया था उस नगर का नाम बनारस है अतः इसका नाम बनारसीदास हो। इस प्रकार मुझे नवीन नाम मिला और मैं आज भी उसी नाम से परिचित हूँ।

अपने जीवन के प्रथम कई वर्ष तक तो मैं बिल्कुल स्वस्थ रहा किन्तु विक्रम सम्वत् १६४८ में मन्द कर्मोदय के उदय से मैं संग्रहिणी रोग से ग्रस्त हो गया। वैद्यों ने विभिन्न प्रकार की औषधियाँ दी फिर भी एक वर्ष तक तो वह रोग चलता ही रहा फिर स्वतः ही ठीक हो गया। एक वर्ष मैं नीरोग रहा। सम्वत् १६५० में चेचक से आक्रान्त हुआ लेकिन उससे भी शीघ्र ही निरामय हो गया।

उसी वर्ष मेरी एक बहन का जन्म हुआ।

जब मैं आठ वर्ष का हुआ एक ब्राह्मण पण्डित के पास पढ़ने भेजा गया। उसके शिक्षालय में मैं एक वर्ष से अधिक नहीं रहा। मेरी बुद्धि बहुत कुशाग्र थी अतः बहुत जल्द लिखना-पढ़ना सीख गया। इससे अधिक ज्ञान की मुझे आवश्यकता नहीं थी।

मेरे पिता जी का हीरे, मोती, माणक का व्यवसाय उस समय ठीक जम गया था।

जब मैं नौ वर्ष का था मेरे विवाह के लिए सम्बन्ध आया। खैराबाद के प्रभात ताम्बी के पुत्र कल्याणमल ताम्बी अपनी एकमात्र लड़की का विवाह मेरे साथ करना चाहते थे। उन्होंने पिता जी को चिट्ठी लिखी। उस जमाने की प्रथानुसार वह चिट्ठी एक ब्राह्मण और उनका पारिवारिक नाई लेकर आया। पिता जी वह चिट्ठी पाकर बहुत खुश हुए और मेरे ललाट पर तिलक लगवा कर सम्बन्ध पक्का कर लिया। मेरा विवाह दो वर्ष पश्चात् करना तय कर विवाह का मुहूर्त्त निकलवाया और कल्याणमल को यथायोग्य प्रत्युत्तर भिजवा दिया।

सम्वत् १६५२ में मेरा विवाह होना निश्चित हुआ था। ठीक उसके अगले वर्ष ही जौनपुर में अकाल पड़ गया। देखते-देखते वस्तुओं के दाम आकाश छूने लगे। खाद्य द्रव्य तो मिलता ही नहीं था। अतः हमारे अंचल के मनुष्यों की दुर्दशा का तो अन्त ही नहीं था।

दुर्भिक्ष कुछ दिनों तक चला फिर भी माघ महीने के पूर्व ही वह शेष हो गया। शेष होते ही मैं विवाह के लिए खैराबाद गया। माघ शुक्ला द्वादशी को मैंने यात्रा प्रारम्भ की और विवाहोपरान्त शीघ्र ही लौट आया।

जिस दिन मैं विवाह कर लौटा उसी दिन मेरी माँ ने मेरी एक बहन को जन्म दिया। फिर दुर्भाग्यवश उसी दिन पिता जी की नानी जी की मृत्यु हो गयी। ठीक उसी मुहूर्त्त में द्वार पर नयी बहू को वरण किया जा रहा है। जो चिन्तनशील है उनके सम्मुख तो यह घटना मानव जीवन की विडम्बना को ही प्रकट करता है। जो मूढ़ हैं वही इससे निर्विकार रह सकते हैं।

दो मास पश्चात् मेरे चाचा श्वसुर ताराचन्द ताम्बी जौनपुर आए और मेरी पत्नी को खैराबाद ले गए।

उनके जाने के बाद जौनपुर में कितनी ही मर्मान्तिक दुःखद घटनाएँ घटीं। नगरपाल नवाब किलिजखान के क्रोध का शहर के प्रत्येक जौहरी, जो जवाहरात का काम करते थे, शिकार बने। उसने सभी को पकड़वाकर जेल में बन्द कर दिया। जेलमुक्त करने की शर्त्त के रूप में अर्थ की जो राशि माँगी गयी वह किसी भी जौहरी के लिए देना असम्भव था। इससे और भी क्रोधित होकर उसने चोर डकैतों की भाँति उन्हें लोह शृंखला से बाँधकर एक पंक्ति में खड़ा कर दिया फिर चमड़े की चाबुक से उन पर कशाघात करवाया। आघात की यंत्रणा से वे प्रायः मृतप्राय हो गए। एक साथ प्राण न लेकर उस समय उन्हें छोड़ दिया गया।

भयभीत जौहरी लोग तब जौनपुर छोड़कर भाग जाने की सोचने लगे। इसके अतिरिक्त धन परिवार की रक्षा का कोई दूसरा उपाय उनके पास नहीं था। अतः सभी ने परामर्श कर मन स्थिर कर लिया। सब एक ही दिशा में न जाकर विभिन्न दिशाओं में भाग गए। मेरे पिता जी पश्चिम की ओर गए। वे गंगा पार कर करमानिकपुर के निकट शाहजादपुर आए। जिस समय वे वहाँ पहुँचे रात हो चुकी थी। फिर मेघों के कारण अन्धकार ने भयानक रूप धारण कर रखा था। मूसलाधार वृष्टि हो रही थी। सारे रास्ते जैसे पानी में डूब गए थे। मेरे पिता जी और परिवार-परिजन भी उसी दुर्योग में एक सराय में जाकर ठहरे। यहीं उन्हें यात्रा प्रारम्भ करने के पश्चात् प्रथम विश्राम मिला।

अपने दुःख की अभिव्यक्ति का यही समय उन्हें मिला था। मेरे पिता जी असहाय मातृ-पितृहीन बालक की तरह रोने लगे। अपने जीवन में वे सुखी

थे। किन्तु इस आकस्मिक विपदा ने उनके सारे आनन्द को ही नष्ट कर डाला। इस सघन निराशा में उन्हें सब कुछ दुःखमय ही लगने लगा। अब उन्हें पत्नी-पुत्र कन्याएँ यहाँ तक कि संचित धन सम्पत्ति भी यन्त्रणादायक लगने लगीं।

हमारी इस विपत्ति के समय शाहजादपुर के एक व्यवसायी करमचन्द माहर पिता जी को खोजते-खोजते उसी धर्मशाला में पहुँच गए और उनका नाम ले-लेकर पुकारने लगे। अन्त में चिन्तामग्न अवस्था में उन्हें एक जगह अकेले बैठे हुए पाया। उन्होंने पिताजी को बहुत सान्त्वना दी और अपने घर पर ठहरने का अनुरोध किया। यहाँ तक कि आने के पूर्व ही वे अपना घर खाली कर स्वयं दूसरे मकान में चले गए थे।

[क्रमशः

जैन कला प्रदर्शन

साराभाई प्रतिष्ठान द्वारा कायमी जैन-कला-प्रदर्शन का आयोजन शाही-बाग, अहमदाबाद में किया जा रहा है। अतएव जैन तीर्थंकर मूर्तियाँ तथा अन्य सपरिकर मूर्तियाँ, धातु प्रतिमाएँ, सचित्र जैन हस्त-प्रति, पूठिया, चंदरवा पाटली, जैन मंदिर में उपयोगित सामग्री, यंत्र, पादुका, १४-स्वप्न, अष्टमंगल-पाटली, सिद्ध-चक्र, चौमुखजी, सहस्रकूट, समवसरण आदि पुरातन वस्तुओं की जरूरत है। अतः नकरा अथवा मूल्य लेकर देने की इच्छा रखते हों उन्हें निम्न स्थल का संपर्क साधने की विनंति है।

इस प्रदर्शन में किसी भी प्रकार की अशातना नहीं होगी।

संपर्क स्थान :
साराभाई प्रतिष्ठान [फोन नं० ६८०७२]
रिट्रीट, शाहीबाग,
अहमदाबाद

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

उसी समय इन्द्र ने आकर वृषभ लंछन प्रभु को विवाह के लिए प्रस्तुत होने की विनती की। मुझे लोक व्यवहार का मार्ग दिखाना होगा और साथ ही मेरे जो कर्म भोग अवशेष हैं उन्हें भोगना भी होगा सोचकर प्रभु ने इन्द्र की विनती स्वीकार की। विधिज्ञाता इन्द्र ने प्रभु को स्नान करवाया, अंगराग लगाया और यथाविधि उन्हें सजाया। फिर प्रभु दिव्य वाहन पर बैठकर विवाह-मण्डप की ओर अग्रसर हुए। इन्द्र छड़ीदार की भाँति उनके आगे चलने लगा। अप्सराएँ उनके दोनों ओर निर्मंछन करने लगीं। इन्द्राणियाँ श्रेयकारी धवल मंगल गीत गाने लगीं। सामानिक देवता दूसरों के रोग-दुःख ग्रहण करने लगे, गन्धर्वगण सहजात आनन्द से बाजा बजाने लगे। इस प्रकार प्रभु दिव्य वाहन पर चढ़े हुए विवाह मण्डप के द्वार-प्रान्त पर आए। फिर विधिज्ञाता प्रभु जिसप्रकार समुद्र अपनी मर्यादा भूमि पर आ खड़ा होता है उसी प्रकार वाहन से अवतरण कर मण्डप के द्वारप्रान्त पर आ खड़े हुए। भगवान इन्द्र के हाथों का सहारा लेकर खड़े थे उस समय ऐसा लगा जैसे हस्ती किसी वृक्ष का सहारा लेकर खड़ा है।

उस समय मण्डप की स्त्रियों ने सराव सम्पुट दरवाजे के मध्य में रखे। उसमें अग्नि और लवण था। लवण के आग में डालने के कारण उसमें तड़-तड़ शब्द हो रहा था। एक स्त्री जिस प्रकार पूर्णिमा की रात्रि चन्द्र को धारण करती है उसी प्रकार रौप्य का एक थाल धारण कर भगवान के सामने आ खड़ी हुई। उसमें दुर्वा आदि मांगलिक द्रव्य रखे हुए थे। एक स्त्री कुशुम्बी वस्त्रों को पहनकर पाँच पत्र विशिष्ट मन्थन-दण्ड जो कि प्रत्यक्ष मंगलरूप था लेकर अर्घ देने के लिए भगवान के सम्मुख खड़ी हो गयी। 'हे अर्घदान कारिणी, अर्घ देने योग्य इस वर को अर्घ दे, मक्खन छींट, समुद्र जैसे अमृत उछालता है वैसे थाल में से दहीं उछाल। हे सुन्दरी, नन्दनवन में से लाए हुए चन्दन का रस तैयार कर। भद्रशाल वन की मिट्टी से जो दूब लायी गयी

थी वह ले आ। जिन भगवान के ऊपर उपस्थित सभी लोगों के नेत्रों द्वारा जो सचल तोरण निर्मित हुआ है और जो त्रिलोक में उत्तम है ऐसे वर तोरण द्वार पर खड़े हैं। उनका शरीर उत्तरीय वस्त्र के आवरण से ढका है, देखकर लगता है मानो गंगा नदी की तरंग में नवीन राजहंस जैसे आच्छादित हो गया है। हे सुन्दरी, हवा से फल झरने लगे हैं, चन्दन सूखने लगा है अतः वर को अधिक देर तक द्वार पर खड़ा मत रखो'—बीच-बीच में ऐसा कहती हुई देवांगनाएँ धवल मंगल गीत गाने लगीं। उस अर्घदान कारिणी स्त्री ने वर को अर्घ दान किया। प्रवाल ओष्ठा उस देवी ने धवल मंगल से शब्द करते हुए कंकणयुक्त हाथों से त्रिलोक स्वामी के ललाट को मन्थन दण्ड से तीन बार स्पर्श किया। तब भगवान ने क्रीड़ावश बाएँ पैर से, जिस प्रकार हिमखण्ड को चूर किया जाता है उसी प्रकार अग्नि सहित शराव सम्पुट को चूर-चूर कर दिया। अर्घ प्रदान कारिणी देवी ने भगवान के कण्ठ में कुसुम्बी वस्त्र स्थापित किया। उस वस्त्र द्वारा आकृष्ट होकर प्रभु ने मातृ भवन में प्रवेश किया।

वहाँ कामदेव के कन्द की भाँति मदन-फल से सुशोभित सूत्र वर-वधू के हाथों में बाँधा गया। देवियों ने वर को मातृ देवियों के सम्मुख उच्च सुवर्ण सिंहासन पर बैठाया। वे वहाँ इस प्रकार शोभित हुए जैसे मेरु पर्वत के शिखर पर सिंह सुशोभित होता है। सुन्दरियों ने शमी और पीपल वृक्ष की छाल का चूर्ण दोनों कन्याओं की हथेली में लेपन किया। उस लेप ने कामदेव रूपी वृक्ष का दोहद पूर्ण किया है ऐसा लगता था। अब लग्न का ठीक समय उपस्थित हुआ तब सावधानी से प्रभु ने दोनों कन्याओं के लेपयुक्त हाथों को अपने हाथ में धारण किया। उसी समय इन्द्र ने उनके लेपयुक्त हाथों में एक-एक मुद्रिका उसी प्रकार रखी जैसे जलपूर्ण मिट्टी में धान्य का बीज-वपन किया जाता है। प्रभु के दोनों हाथ जब उनके दोनों हाथों से मिलित हुए तब वे दो शाखाओं में लता वेष्टित होने पर वृक्ष जिस प्रकार शोभित होता है वैसे ही शोभित होने लगे। नदी का जल जैसे समुद्र में मिल जाता है वैसे ही वधुओं के नेत्र वर के नेत्रों से मिले। वायुहीन जल की तरह वर-वधू के नयन नयन से और मन मन से मिलित हुए। वे एक दूसरे की अक्षि तारकाओं में प्रतिबिम्बित होने लगे। वे ऐसे लगने लगे जैसे प्रेम में वे एक दूसरे में समाहित हो गए।

उसी समय विद्युत्प्रभादि गजदन्त जिसप्रकार मेरु के निकट ही रहते हैं वैसे ही सामानिक देवतागण अनुचरों की भाँति भगवान के निकट अवस्थित

थे। कन्याओं के साथ जो स्त्रियाँ थीं उनमें चतुर परिहास-रसिका इस प्रकार परिहास गीत गाने लगीं : 'जैसे ज्वरग्रस्त व्यक्ति समस्त समुद्र का जल पान करने की इच्छा करता है उसी प्रकार अनुचरगण समस्त मोदक खाने की इच्छा कर रहे हैं। कुकुर जिस प्रकार प्याज पर अपनी अखण्ड दृष्टि रखता है उसी प्रकार भण्डार पर लगी हुई इन अनुचरों की दृष्टि कुकुर दृष्टि से प्रतिस्पर्द्धा कर रही है। जन्म से ही जिसने कभी भोज नहीं खाया ऐसे गरीब बालक की तरह इन अनुचरों का मन वृहद् भोज के लिए लालायित हो उठा है। चातक जिस प्रकार मेघ वारि की इच्छा करता है, याचक धन की, उसी प्रकार ये सब अनुचर सुपारी पाने की इच्छा कर रहे हैं। गाएँ जैसे घास खाने की इच्छा करती हैं उसी प्रकार ताम्बूल पत्र खाने के लिए सभी अनुचर उत्कंठित हैं। मक्खन पिण्ड को देखकर जैसे विलाव की जीभ से जल गिरने लगता है वैसे ही चूर्ण खाने के लिए इन की जीभों में जल भर आया है। कर्दम से जैसे भैंस आकृष्ट होती है उसी प्रकार न सबका मन विलेपन में आकृष्ट हो गया है। उन्मत्त व्यक्ति जैसे निर्माल्य में प्रीति रखते हैं उसी प्रकार इनकी दृष्टि पुष्पदाम पर अटकी हुई है।'

इस प्रकार परिहासपूर्ण गीत सुनने के लिए देवतागण कौतूहल वश उत्कर्ण और ऊर्ध्वमुख होकर अनवरत देख रहे थे। उस समय वे चित्रलिखित से लग रहे थे।

लोगों को यह व्यवहार दिखाने योग्य है समझकर वाद-विवाद में निर्वाचित मध्यस्थ की भाँति प्रभु इन सब को उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे।

तत्पश्चात् इन्द्र ने प्रभु के उत्तरीय के साथ दोनों देवियों के उत्तरीय इस प्रकार बाँध दिए जैसे जहाज के साथ नौका बाँधी जाती है। आभियोगिक देवताओं की तरह स्वयं इन्द्र भक्ति से भरकर भगवान को गोद में उठाकर वेदीगृह ले जाने लगे। इन्द्राणियाँ दोनों देवियों को गोद में लेकर सन्नद्ध करतल बिना छुड़ाए भगवान के साथ-साथ चलने लगीं। त्रिलोक के शिरोमणि रत्न समान वधुएँ और वर ने पूर्व द्वार से वेदी स्थल में प्रवेश किया। किसी, त्रायस्त्रिंश देव ने उसी क्षण वेदी से इस प्रकार अग्नि प्रकटित की मानों अग्नि पृथ्वी से ही निकल रही है। उसमें समिध डालते ही अग्नि इस प्रकार आकाश में फैल गयी मानों आकाशचारी विद्याधर कन्याओं की अवतंस श्रेणी हो।

स्त्रियाँ मंगल गीत गा रही थीं। प्रभु ने सुमंगला और सुनन्दा के साथ अष्टपदी पूर्ण होने तक वेदी की प्रदक्षिणा दी। फिर जब आशीर्वाद गीत

प्रारम्भ हुआ तब इन्द्र ने तीनों के हाथों को पृथक किया और उत्तरीय ग्रन्थि को खोल दिया।

तदुपरान्त प्रभु के विवाहोत्सव से आनन्दित इन्द्र सूत्रधार की तरह इन्द्राणियों सहित हस्ताभिनय प्रदर्शित कर नृत्य करने लगे। पवन द्वारा आन्दोलित वृक्ष के साथ जैसे आश्रित लता भी नृत्य करने लगती है वैसे ही इन्द्र के साथ अन्य देवता भी नृत्य करने लगे। कोई-कोई भरत नाट्य पद्धति से विचित्र प्रकार से नृत्य करने लगे। किसी-किसी ने इस प्रकार गीत गाना प्रारम्भ किया जैसे वे गन्धर्व जाति के हैं। कोई-कोई अपने मुख से ऐसी ध्वनि निकालने लगे मानों उनका मुख वादित्र हो। कोई-कोई चपलतावश बन्दर की तरह ही कूद-फाँद करने लगे। कोई विदूषक की भाँति लोगों को हँसाने लगे। इस प्रकार हर्षोन्मत होकर जिनके सम्मुख भक्ति प्रकट की गयी वे भगवान आदिनाथ प्रभु सुमंगला और सुनन्दा को अपने दोनों ओर बैठाकर दिव्य वाहन पर आरोहण कर अपने आवास को लौट गए।

नाट्यशाला का कार्य समाप्त होने पर सूत्रधार जैसे अपने घर लौट जाता है उसी प्रकार विवाहोत्सव समाप्त कर इन्द्र देवलोक को लौट गए। तभी से प्रभु ने जिस प्रकार विवाह पद्धति प्रदर्शित की वह लोक में प्रचलित हो गयी। कारण महापुरुषों की प्रकृति अन्य के मंगल के लिए ही हो जाती है।

अनासक्त होने पर भी प्रभु तदुपरान्त अपनी दोनों पत्नियों के साथ काल व्यतीत करने लगे। कारण अशातावेदनीय कर्मों का जो पहले बन्धन हो गया था वह बिना भोगे क्षय होने वाला नहीं था। विवाहोपरान्त प्रभु छः लाख पूर्व से कुछ कम समय तक दोनों पत्नियों के साथ सुखभोग में निरत रहे।

उसी समय बाहु और पीठ के जीव सर्वार्थसिद्धि विमान से च्युत होकर सुमंगला की कुक्षी में एवं सुबाहु और महापीठ के जीव सुनन्दा की कुक्षी में युग्म रूप से उत्पन्न हुए। मरुदेवी की भाँति गर्भ के माहात्म्य को सूचित करने वाले चौदह महास्वप्न सुमंगला देवी ने देखे। सुमंगला ने स्वप्न के विषय में प्रभु को बताया। प्रभु ने कहा—"तुम्हारे चक्रवर्ती पुत्र होगा।"

समय प्राप्त होने पर पूर्व दिशा जिस प्रकार सूर्य और सन्ध्या को जन्म देती है उसी प्रकार सुमंगला देवी ने निजकान्ति से दिक्-समूह प्रकाशकारी दो बच्चों को जन्म दिया। उनमें पुत्र का नाम भरत, पुत्री का नाम ब्राह्मी रखा गया।

वर्षा ऋतु जैसे मेघ और विद्युत को जन्म देती है उसी प्रकार सुनन्दा ने सुन्दर आकृतियुक्त बाहुबली और सुन्दरी को जन्म दिया।

तदुपरान्त विदुर पर्वत की धरती जैसे रत्न उत्पन्न करती है उसी प्रकार सुमंगला ने उनचास युग्म पुत्रों को जन्म दिया। महा-पराक्रमी और उत्साही वे बालक क्रीड़ा करते हुए विन्ध्य पर्वत के हस्ति शावकों की तरह वर्द्धित और पुष्ट होने लगे। वृक्ष जैसे अनेक शाखाओं से शोभित होता है उसी प्रकार अपने पुत्रों से परिवृत भगवान ऋषभ सुशोभित होने लगे।

प्रभात के समय जिस प्रकार प्रदीप का आलोक कम हो जाता है उसी प्रकार काल दोष से कल्पवृक्षों का प्रभाव कम होने लगा। अश्वत्थ वृक्ष में जैसे लाक्ष कण होते हैं उसी प्रकार युगलिकों के मध्य धीरे-धीरे क्रोधादि कषाय उत्पन्न होने लगे। सर्प जैसे तीन प्रकार की ताड़नाओं की परवाह नहीं करता उसी प्रकार युगलिक भी हाकार, माकार, धिक्कार तीन प्रकार की नीतियों की उपेक्षा करने लगे। तब युगलिकों के मध्य जो विचक्षण थे वे प्रभु के निकट आकर उनके पिता के राज्य में जो अनुचित घटना घट रही थी उसे सुनाया। सुनकर तीन ज्ञान के धारक प्रभु ने जाति स्मरण ज्ञान से कहा—"संसार में जो मर्यादा का उल्लंघन करता है उन्हें दण्ड देने के लिए राजा होते हैं। किन्तु राजा को उच्चासन पर बैठाकर पहले उसका अभिषेक किया जाता है। उसके हाथ में अखण्ड अधिकार और चतुरंगिनी सेना रहती है।"

यह सुनकर वे बोले—"हे स्वामी, आप हमारे राजा बनिए। हमारी उपेक्षा आपके लिए उचित नहीं है। कारण हमारे मध्य आप जैसा कोई नहीं है।"

भगवान बोले—"तुमलोग उत्तम कुलकर नाभि के पास जाकर प्रार्थना करो। वे तुम्हें राजा देंगे।"

तब उन्होंने कुलकराग्रणी नाभि के पास जाकर निवेदन किया। नाभि ने कहा—"ऋषभ तुम्हारे राजा हों।"

युगलिकगण भगवान के अभिषेक के लिए जल लेने गए। उसी समय स्वर्गाधिपति इन्द्र का सिंहासन कम्पित हुआ। उन्होंने अवधिज्ञान से प्रभु का राज्याभिषेक समय जानकर लोग जिस प्रकार एक घर से दूसरे घर में जाते हैं उसी प्रकार क्षणमात्र में अयोध्या आकर उपस्थित हुए।

सौधर्म कल्प के उन इन्द्र ने स्वर्ण वेदिका निर्मित कर अति पाण्डुकबला शिला की भाँति उस पर एक सिंहासन स्थापित किया। पूर्वदिक् के अधिपतियों ने स्वस्तिवाचक की भाँति देवताओं द्वारा लाए गए तीर्थजल से प्रभु का अभिषेक किया। इन्द्र ने प्रभु को दिव्य वस्त्र पहनाए। निर्मलता के कारण वे उस समय चन्द्र की भाँति सुन्दर और तेजोमय लगने लगे। फिर

इन्द्र ने उनके सर्वांग पर मुकुटादि अलंकार धारण करवाए। उसी समय युगलिक भी जल लेकर आ गए। भगवान को दिव्य वस्त्र से भूषित देखकर वे सामने आकर इस प्रकार खड़े हो गए मानों उन्हें अर्घदान दे रहे हों। दिव्य वस्त्रालंकारों से विभूषित प्रभु के मस्तक पर जल डालना उचित नहीं समझकर उन्होंने कमल पत्र में लाया हुआ जल प्रभु के पैरों पर समर्पित कर दिया। इससे इन्द्र समझ गये वे अत्यन्त विनीत हैं। उन्होंने कुबेर को उनके निवास के लिए विनीता नामक नगरी स्थापन का आदेश दिया। फिर इन्द्र देवलोक को लौट गए।

कुबेर ने बारह योजन दीर्घ और नौ योजन प्रशस्त विनीता नामक नगरी स्थापित की। विनीता का दूसरा नाम अयोध्या रखा। यक्षपति कुबेर ने उस नगरी को अक्षय वस्त्रालंकार और धन-धान्य से पूर्ण किया। उस नगरी में हीरक इन्द्रनील और वैदूर्यमणि निर्मित वृहद्-वृहद् अट्टालिकाएँ अपने किरण जाल से दीवाल रहित आकाश में भी विचित्र चित्र रचना कर रही थी। मेरु पर्वत के शिखर तुल्य उच्च स्वर्ण अट्टालिकाएं पताकाओं से सुशोभित होकर वन्दनवार की लीला को विस्तृत कर रही थी। दुर्ग प्राकार के ऊपर संयुक्त क्षुद्र स्तम्भ श्रेणी माणिक्य द्वारा निर्मित हुई थीं। वे विद्याधर सुन्दरियों के लिए अनायास ही दर्पण का कार्य कर रही थीं। उस नगर के प्रत्येक गृह आंगन में मुक्ता के स्वस्तिक अंकित थे। उन मुक्ताओं से लड़कियाँ कर्कटक खेल खेलती थीं। उस नगरी के उद्यान के वृहद्-वृहद् वृक्ष से दिन-रात धक्का खाकर खेचरों के विमान कुछ क्षण के लिए विहग नीड़ों का भ्रम उत्पन्न करते थे। विपणियों और गृहों स्थित रत्नराशि देखकर शिखर सम्पन्न रोहिणाचल की शंका हो जाती। गृह वापिकाएँ जल क्रीड़ारत सुन्दरियों की मुक्तामाला छिन्न हो जाने से ताम्रपर्णी शोभा धारण करते थे। वहाँ के श्रेष्ठी इतने धनी थे कि श्रेष्ठी पुत्रों को देखकर लगता जैसे स्वयं कुबेर वहाँ वाणिज्य करने आए हैं। रात्रि के समय चन्द्रकान्त मणि की दीवाल से प्रवाहित जल से धूल स्थिर हो जाती। अयोध्या नगरी अमृत तुल्य जलपूर्ण असंख्य कुओं, वापी और सरोवरों से नवीन अमृत के कुण्ड पूर्ण नागलोक-सी शोभित होती थी।

प्रभु जब बीस लाख पूर्व के हुए तब प्रजा पालन के लिए राजा हुए। मन्त्रों के मध्य जैसे अकार है वैसे ही राजाओं के मध्य प्रथम राजा ऋषभ अपनी सन्तान की ही तरह प्रजा का पालन करने लगे। उन्होंने दुष्टों को दण्ड देने के लिए और सद्पुरुषों के पालन के लिए उद्यमी मन्त्री नियुक्त किए। वे प्रभु के अंग स्वरूप थे। महाराजा ऋषभ ने अपने राज्य की चोरी आदि से रक्षा

करने के लिए इन्द्र के लोकपाल की तरह चतुर चौकीदार नियुक्त किए। राज्य हस्ती की तरह प्रभु राज्य की स्थिति के लिए शरीर के उत्तम अंग मस्तक की तरह सैन्य के उत्कृष्ट अंग स्वरूप हस्ती रखे। सूर्याश्व के स्पर्द्धाकारी उच्च ग्रीवा सम्पन्न उच्च जाति के अश्वों से प्रभु ने हयशाला पूर्ण की। नाभिनन्दन ने उत्तम काष्ठ से संश्लिष्ट सुन्दर रथ तैयार करवाया। चक्रवर्ती जन्म में एकत्रित की थी ऐसे परीक्षित सामर्थ्ययुक्त पदातिक सैन्य एकत्रित की। उन्होंने जो सेनापति नियुक्त किया वे नूतन साम्राज्य के स्तम्भ रूप प्रतीत होते थे। गाएँ, भैंसें, वलिवंद, खच्चर, ऊँट आदि पशुओं को भी व्यवहार ज्ञाता प्रभु ने एकत्रित किए।

उस समय पुत्रहीन वंश की भाँति कल्पवृक्ष विनष्ट हो जाने पर मनुष्यों ने फल-मूल आदि खाना प्रारम्भ किया। चावल, गेहूँ, चना, दाल आदि शष्य भी तब अपने से ही तृण की भाँति उगने लगे थे। युगलिक उन्हें बिना पकाए ही खाते। किन्तु अपक्क अन्न हजम न होने के कारण उन्होंने प्रभु से यह बात निवेदन की। प्रभु ने कहा—"उनका छिलका उतार कर खाओ।" प्रभु के आदेशानुसार उन्होंने इसी प्रकार शष्य खाना आरम्भ किया। किन्तु सख्त होने के कारण वह भी उन्हें नहीं पचा। तब वे फिर प्रभु के निकट गए। भगवान ने कहा—"पहले शष्य को हाथ से मसलो फिर उन्हें जल में भिगो दो। फिर पत्ते के दोने में रखकर खाओ।" उन्होंने इसी प्रकार शष्य खाना आरम्भ किया। फिर भी उनका अजीर्ण दूर नहीं हुआ। तब वे फिर प्रभु के निकट आए। प्रभु ने कहा—"उपरोक्त विधि करने के पश्चात् मुष्ठि या बगल में उस शष्य को इस प्रकार रखो जिससे वह ऊष्ण हो जाए फिर खाओ।" इस प्रकार खाने पर भी अजीर्ण दूर नहीं हुआ। वे क्रमशः दुर्बल होने लगे। उसी समय एकदिन दो वृक्ष शाखाओं के घर्षण से अग्नि उत्पन्न हुई।

उस अग्नि ने घास और वृक्ष लतादि को जलाना आरम्भ किया। लोगों ने उस ज्वलन्त अग्नि को रत्न समझकर रत्न लेने के लिए हस्त प्रसारित किया। उससे उनके हाथ जल गए। तब वे प्रभु के निकट जाकर बोले—"बन में एक अद्‌भुत भूत उत्पन्न हुआ है।" प्रभु बोले—"स्निग्ध और रूक्ष काल मिलित होने से अग्नि प्रकट हुई है। एकान्त रूक्ष और एकान्त स्निग्ध काल में अग्नि कभी प्रकट नहीं होती। तुम उसके पास जो गुल्म तृणादि हैं उन्हें उसके पास सरका दो। फिर उसी अग्नि में पूर्व कथित विधि से तैयार किया हुआ शष्य पकाओ। पकने पर उसे खाओ।"

उन अज्ञानियों ने शष्य अग्नि में डाल दिया। अग्नि ने उसे जला डाला। तब वे प्रभु के पास आकर बोले—"प्रभु लगता है अग्नि क्षुधार्त है। इस अग्नि में जितना शष्य निक्षेप किया उसने सब उदरस्थ कर लिया। एक दाना भी नहीं लौटाया।" उस समय प्रभु हस्ती पर आरूढ़ थे। उन्होंने उसी समय उन्हें जल में भींगी मिट्टी का पिण्ड लाने को कहा। उस मिट्टी को हाथी के मस्तक पर रखकर हाथ से विस्तृत करते हुए हाथी के मस्तक के आकार का एक पात्र तैयार किया। इस प्रकार शिल्प के मध्य प्रभु ने कुम्हार का शिल्प सर्वप्रथम प्रकट किया। फिर उन्होंने कहा—"इसी प्रकार और बहुत से पात्र बनाओ। उन्हें अग्नि पर रखकर सुखा लो। फिर उसी पात्र में भीगे हुए शष्य रखकर पकाओ। शष्य पक्क हो जाने पर पात्र अग्नि से नीचे उतारो फिर खाओ।" उन्होंने प्रभु की आज्ञानुसार समस्त कार्य किया। तभी से प्रथम कारीगर कुम्हार हुआ। फिर प्रभु ने वर्द्धकी अर्थात् गृह निर्माणकारी राजमिस्त्रियों की सृष्टि की। कहा भी गया है महापुरुष जो कुछ भी करते हैं संसार के मंगल के लिए ही करते हैं। घर में चित्र बनाना और क्रीड़ा के लिए प्रभु ने चित्रकला की शिक्षा देकर अनेक लोगों को चित्रकार बना दिया। वस्त्र बुनने के लिए जुलाहे तैयार किए। कारण उस समय सभी कल्पवृक्षों के स्थान पर प्रभु ही एक मात्र कल्पवृक्ष थे। लोगों को केश और नख बढ़ जाने से कष्ट उठाते देख उन्होंने नाई बनाए। इन पाँच शिल्पों में (कुम्हार, राजमिस्त्री, चित्रकार, जुलाहा और नाई) प्रत्येक के बीस-बीस भेद हुए। इससे वे शिल्प नदी के प्रवाह की तरह एक सौ रूप में विस्तृत हुए (अर्थात् शिल्प एक सौ प्रकार का हुआ)। लोगों की जीविका के लिए प्रभु ने घसियारा, लकड़हारा, किसान और वणिक कार्य की शिक्षा दी। उन्होंने साम, दाम, दण्ड, भेद नीति का प्रवर्तन किया। ये चार प्रकार की नीतियाँ जगत की व्यवस्था रूप नगरी के मानों चार पथ थे।

[क्रमशः

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

जैन जगत ॥ अगस्त १९८२

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'मानव जीवन का अधिष्ठान : उत्तम क्षमा' (यशपाल जैन), 'आत्मा का स्वाभाविक गुण—क्षमा' (मुनि श्री विद्यानन्द जी), 'आत्म-साक्षात्कार की प्रक्रिया [२]' (युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ), 'पर्यूषण : संभावनाओं की खोज' (डा० नेमीचन्द जैन), 'स्वाध्याय का महत्व' (डा० ज्योति प्रसाद जैन) ।

तीर्थंकर ॥ अगस्त १९८२

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'भूगोल खगोल : जैन धर्म : विज्ञान' (स्वामी सत्य भक्त), 'कुछ हुआ है, बहुत कुछ शेष है' (बातचीत : मुनि अभय सागर जी, डा० नेमी चन्द जैन), 'पृथ्वी : कतिपय नये तथ्य' (मुनिश्री नथमल), 'जैन भूगोल : गणित, कर्म और चिन्तन के प्रकाश में प्राकृतिक रहस्य' (कन्हैयालाल सरावगी), 'जम्बूद्वीप : गहन अध्ययन/व्यापक अनुसन्धान' (अनुपम जैन), 'जैन भूगोल : वैज्ञानिक लेखा-जोखा जरूरी' (गणेश ललवानी), 'मूर्तिपूजा एक तर्क संगत छानबीन' (डा० सागरमल जैन), 'समणसुत्तं चयनिका', 'अन्तिम पृष्ठ चिन्तन के रूप में खत' (गणेश ललवानी) ।

तुलसी प्रज्ञा ॥ अप्रेल-जून १९८२

आचार्य श्री तुलसी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'जैन परम्परा में योग' (डा० नथमल टाँटिया), 'सिद्धसेन दिवाकर प्रणीत ध्यान द्वात्रिंशिका' (संपादन व अनुवाद डा० नथमल टाँटिया), 'आयरो : हिन्दी पद्यानुवाद' (मुनि श्री माँगीलाल), 'Early Jaina Meditation' (Johannes Bronkhorst), 'Vipasyana and Preksa' (Dr. N. Tatia), 'Jaina Yoga' (Dr. T. G. Kalghatgi), 'Jaina Technical Terms' (Dr. Mohanlal Mehta).

श्रमण ॥ अगस्त १९८२

स अंक में है 'पर्यूषण पर्व : क्या, कब, क्यों और कैसे ?' (सागरमल जैन), 'सिरोही जिले में जैन धर्म' (सोहनलाल पाटनी) ।

Vol. VI No. 5 : Titthayara : September 1982
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

B

Hewlett's Mixture
for
Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700001